अमर उजाला

नई दिल्ली । सोमवार, 29 अप्रैल 2019

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

प्रजातंत्र का सार ही यह है कि उसमें हर व्यक्ति उन हितों का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे राष्ट्र बनता है।
-महात्मा गांधी

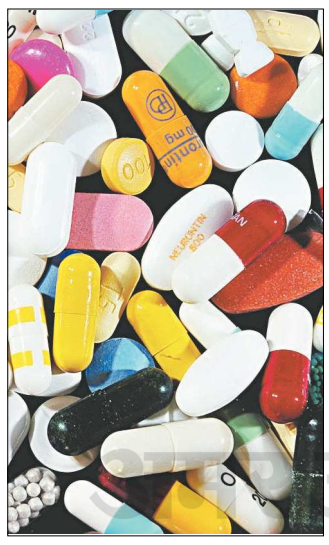

अमेरिकी संस्था यूएसटीआर की ताजा रिपोर्ट में एक बार फिर भारत की सस्ती जेनेरिक दवाओं को निशाना बनाया गया है, जबकि भारत किफायती स्वास्थ्य सुविधा के मामले में प्रतिबद्ध है, और जीवन रक्षक दवाओं को मुनाफे का माध्यम नहीं बना सकता।

सस्ती दवा के पक्ष में

अमेरिकी संस्था यूएसटीआर (यूनाइटेड स्टेट ट्रेड रीप्रेजेंटेटिव) की हाल में आई 'स्पेशल 301 रिपोर्ट' में भारत को जिस तरह नकली दवाओं का प्रमुख स्रोत बताया गया है, वह घोर आपत्तिजनक होने के साथ-साथ अमेरिका की दबाव डालने वाली रणनीति का भी सुबूत है। हर साल यूएसटीआर अपनी इस रिपोर्ट में भारत को प्रायोरिटी वॉच लिस्ट में रखता है। यूएसटीआर का कहना है कि पेटेंट कानून के मामले में भारत का रुख लचर है। जबकि ऐसा है नहीं। दुनिया भर में दवाएं महंगी हैं, क्योंकि पेटेंट के नाम पर दवा कंपनियां अनाप-शनाप दाम बढ़ाती हैं। जबकि भारत का पेटेंट कानून फार्मास्यूटिकल पेटेंट देने और दवाओं के दाम कम रखने के बीच संतुलन स्थापित करता है। वैश्विक व्यापार नीति के तहत हर देश को अपने जन स्वास्थ्य की जरूरतों के अनुरूप नीतियां बनाने का अधिकार है। इसीलिए उदारवादी अर्थनीति को अंगीकार करने के बावजूद स्वास्थ्य सुविधा के क्षेत्र में भारत हमेशा सस्ती जेनेरिक दवाओं का उत्पादन बढ़ाने की बात करता है। यह देश की बड़ी आबादी को स्वास्थ्य सुविधा मुहैया कराने के लिए तो जरूरी है ही, इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि महंगी दवाओं के कारण लोगों के सड़कों पर आ जाने की रिपोर्टें भी आती रहती हैं। फिर सस्ती जेनेरिक दवाओं के निर्यात के कारण भारत को विकासशील देशों की फार्मेसी भी कहा जाता है, क्योंकि यह मलयेशिया और कोलंबिया समेत पूरी दुनिया में सस्ती जेनेरिक दवाओं की 20 फीसदी आपूर्ति करता है। और सिर्फ गरीब देशों की बात नहीं है, भारतीय दवा निर्यात का 30 फीसदी हिस्सा अमेरिका को जाता है, और 55 फीसदी भारतीय दवाएं उन देशों में निर्यात की जाती हैं, जहां के बाजार नियंत्रित हैं। उत्तर अमेरिका और यूरोप से बढ़ी हुई मांग के कारण ही 2018-19 में भारत का दवा निर्यात 11 फीसदी बढ़ गया। कहां तो भारत की तारीफ की जानी चाहिए कि उसने जन स्वास्थ्य की चिंता कर दवाओं की कीमत कम रखी है। लेकिन इसके बजाय उसे दंडित करने की कोशिश होती है। यूएसटीआर की यह रिपोर्ट वस्तुतः भारत पर दबाव बनाने की रणनीति है, जिससे कि वह दुनिया में किफायती जेनेरिक दवाओं का प्रसार बढ़ने से रोके, और अमेरिकी दवा कंपनियों की बिक्री और मुनाफा बढ़े।

मुद्दों से क्यों भटक रहे हैं चुनाव

विभिन्न दलों के प्रत्याशी सत्रहवीं लोकभा के लिए संघर्ष कर रहे हैं। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में चुनाव कराना एक कठिन काम है। यह हमारी विशाल चुनावी मशीनरी, जिसमें बदनाम कर दी गई नौकरशाही भी शामिल है, और लोगों में इस बात की बढ़ती स्वीकारोक्ति के कारण संभव है, कि बूथ पर कब्जा और फर्जी मतदान कारगर नहीं हो सकता।

स्वतंत्र, निष्पक्ष और समय पर चुनाव होने के कारण, जो किसी भी लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है, हम अपने लोकतंत्र पर गर्व कर सकते हैं। चुनाव किसी भी लोकतंत्र का जीवन रक्त है, क्योंकि स्वतंत्र और गुप्त मतदान के जरिये मतदाता अप्रिय नेताओं को खारिज करते हैं, अपनी ताकत बहाल करते हैं और लोकतंत्र में हमारे विश्वास को पुनः मजबूत करते हैं। इसके बावजूद देश और राजनीतिक पार्टियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि हमारी पूरी चुनावी प्रक्रिया बदतर और बेहद खर्चीली हो गई है।

हमारे जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों और पीड़ित जनता के कल्याण, बेरोजगारों, कमजोरों, संकटग्रस्त कृषि क्षेत्र, लगातार सूखा प्रभावित क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय हमारी राजनीतिक पार्टियां खजाना लुटा रही हैं और मीडिया का ध्यान गैर-मुद्दों की तरफ खींच रही हैं।

हर मतदाता को लुभाने के लिए चुनावी घोषणापत्र बड़ी सावधानी के साथ तैयार किए जाते हैं, लेकिन फिर उन पर चर्चा या बहस नहीं होती। पारंपरिक राजनीतिक विमर्शों और सिद्धांतों को बड़ी होशियारी से राष्ट्रवाद के नाम पर सीमित कर दिया गया है और संकीर्ण सांप्रदायिक पहचान संविधान में निहित हमारी लोकतांत्रिक बहुलता की नींव को कमजोर कर रही है।

स्वतंत्र, निष्पक्ष और समय पर चुनाव होने के कारण हम अपने लोकतंत्र पर गर्व कर सकते हैं। पर देश और राजनीतिक पार्टियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि हमारी पूरी चुनावी प्रक्रिया बदतर और खर्चीली हो गई है।

डी एस असवाल

सोलहवीं लोकसभा के महत्वपूर्ण चुनावी मुद्दे कई मामलों में अधिक स्पष्ट हो गए हैं तथा व्यापक आयामों तक पहुंच गए हैं, खासकर बेरोजगारी और कृषि तथा लघु, मध्यम व सूक्ष्म उद्यमों को, जिन्हें हमारी अर्थव्यवस्था का पहिया माना जाता है, संकट ने घेर लिया है। लेकिन ये अतीत की बातें हैं और यकीनन हमारी सार्वजनिक स्मृति कम हो रही है। ऐसा लगने लगा है कि वे ज्यादा शक्तिशाली राष्ट्रीय चिंताओं के कर्कश शोर में गुम हो गई हैं।

राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्र की एकता और अखंडता पर कथित सर्वोपरि खतरे तथा राष्ट्रवादी बनाम राष्ट्रद्रोही की बहस में (जहां विचारों की असहमति को राष्ट्र विरोधी कहा जाता है) रोजगार की मांग करने वालों को हमने यह सिखाया है कि राष्ट्र सबसे पहले आता है।

रोजगार सृजन, समावेशी विकास, लैंगिक न्याय, धार्मिक और सामाजिक सद्भाव, स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे पारंपरिक चुनावी वादों को मिथकीय राष्ट्रवाद और मैं, राष्ट्र का रक्षक बनाम अन्य की बहस में दबा दिया गया है। प्रसिद्ध कवि टी एस इलियट ने कहा है, 'पिछले साल के शब्द पिछले साल की भाषा के हैं। और अगले साल के शब्द दूसरी भाषा की प्रतीक्षा करते हैं।'

इसके अलावा चुनाव अभियानों का संचालन असली मुद्दों के जरिये नहीं, बल्कि आम जनता की भारी भीड़ और रोड शो के जरिये किया जाता है। रोड शो शब्द हालांकि अंग्रेजी शब्दकोश में बहुत नया और शानदार नहीं है, फिर भी चुनावी प्रभुत्व की घातक रणनीति का यह एक गुप्त मंत्र बन गया है।

हाल के वर्षों में यह माना जाने लगा है कि जिसका रोड शो जितना बड़ा होगा, उसकी जीत की संभावना और चुनावी जीत का अंतर उतना ही बड़ा होगा। रोड शो को चुनावी प्रभुत्व के रूप में सिद्ध किया जाने लगा है और भीड़ जुटाने को नेता की करिश्माई सामूहिक अपील के रूप में पेश किया जाता है, जिससे यह संदेश दिया जाता है कि राजनीतिक विरोधी चुनावी मुकाबले में कहीं नहीं हैं।

रोड शो हालांकि प्रतिबंधित नहीं है, लेकिन भारी रोड शो अति समृद्ध लोगों की शादियों की तरह नागरिक जीवन को पंगु बना देते हैं। इसलिए लोकतंत्र की सेहत और दृढ़ता के लिए बहस और कुछ नहीं, बल्कि लोकतंत्र के त्योहार के नाम पर सत्ता का घोर दुरुपयोग और दिखावा है।

ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया, जापान या कनाडा जैसे विश्व के कुछ अग्रणी और परिपक्व लोकतंत्र में, जो भारतीय लोकतंत्र से पुराने हैं, चुनाव कोई कम उत्सुकता से नहीं लड़े जाते, लेकिन वहां लोकतंत्र के पहिये को पंगु बनाने वाले रोड शो नहीं होते। इसके बजाय उन देशों में स्वतंत्र मीडिया के जरिये खुलकर मुद्दों पर चर्चा और बहस होती है, न कि गैर पत्रकारों द्वारा पहले से तैयार इंटरव्यू के जरिये।

लोगों को ध्रुवीकृत करने के लिए सांविधानिक गारंटी या आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन को लोगों और ज्यादा से ज्यादा प्रतिस्पर्धी राजनीतिक दलों द्वारा सख्ती से देखा जाना चाहिए, ताकि मतदाताओं को अटपटे ढंग से जुनूनी बनाए बिना पूरी चुनावी प्रक्रिया स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से संपन्न कराई जा सके। हमारे धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र के ताने-बाने की रक्षा और मजबूती के लिए तथा भारत की संप्रभुता और अखंडता की रक्षा तथा चुनावी प्रक्रिया की शुचिता को बचाने के लिए और कोई उपाय नहीं है।

किसी भी पीढ़ी के नेताओं को यह सोचने की छूट कतई नहीं दी जा सकती कि वह अकेले हमारे लोकतंत्र के उद्धारकर्ता हैं। हमारा लोकतंत्र 'बनाना रिपब्लिक' (राजनीतिक रूप से अस्थिर देश, जो किसी एक उत्पाद के निर्यात पर निर्भर होता है) नहीं है, क्योंकि आम आदमी समझदार है, रोड शो से अलग सोचता है और समस्याओं के निवारण और समावेशी विकास व समृद्धि को बढ़ाने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम है।

-लेखक संविधान व तुलनात्मक राजनीति के विशेषज्ञ हैं।

अंतर्ध्वनि

>> लेबो माशिले

अपने जीवन की उज्ज्वलता पर किसी को छाया न डालने दें

मैं एक कवि, एक कलाकार, लेखक, अभिनेत्री, निर्माता, टीवी प्रस्तुतकर्ता होने के साथ एक मां, एक दोस्त, एक बेटी और एक बहन भी हूं। साहित्य से प्यार करते हुए ही मैं बड़ी हुई। मेरा सौभाग्य है कि मैं एक ऐसे घर में पैदा हुई, जहां सभी लोग पढ़ने में दिलचस्पी रखते थे। छह या सात वर्ष की उम्र में ही मेरी मां मुझे पुस्तकालय ले गई। प्राइमरी स्कूल में ही मैं पत्रिकाएं रखने लगी और हाई स्कूल में साहित्य के प्रति मेरा प्यार प्रगाढ़ हो गया। जब मैं किशोर उम्र की थी, तभी हमारा परिवार दक्षिण अफ्रीका से अमेरिका चला गया। लेकिन थोड़े दिनों के बाद मेरी मां और मेरे पिता का तलाक हो गया। उस दौरान मेरे जीवन में बहुत कुछ हुआ और उस दौर में पत्रिकाएं और किताबें ही मेरी सच्ची साथी रहीं। उसी समय मैंने कविता लिखना शुरू किया, लेकिन उसे किसी से साझा नहीं करती थी। विश्वविद्यालय में मैं कानून की पढ़ाई करने लगी, लेकिन अपने दिल की गहराइयों से मैं जानती थी कि यह वह चीज नहीं है, जो मैं अपने जीवन में करना चाहती हूं।

मेरा मानना है कि साहित्य उन लोगों का कामकाज है, जिन्हें समय की चिंता नहीं रहती। मुझे लगता है कि कविता हमेशा परिपक्व रही है और अलग-अलग उद्देश्यों के लिए उसमें बदलाव आते रहे हैं। हाल के इतिहास को देखें, तो संघर्ष के दौरान कविता एक शक्तिशाली वाहक रही है। मुझे लगता है कि लेखन या किसी भी कला में खुद को जानना सबसे महत्वपूर्ण होता है। अपने किसी भी हिस्से, अपनी परवरिश, अपने सपनों, अपने जीवन को प्रभावित करने वाले लोगों के लिए शर्मिंदा नहीं होना चाहिए। उन लोगों के लिए कभी शर्मिंदा नहीं होना चाहिए, जिन्होंने आपके जीवन को छुआ है। अपने जीवन की उज्ज्वलता पर किसी को छाया नहीं डालने देना चाहिए।

-दक्षिण अफ्रीकी लेखिका एवं अभिनेत्री

मंजिलें और भी हैं

>> चेरुवायल रामन

धान की देसी किस्मों को बचाने की मुहिम में लगा हूं

मैं केरल में वायनाड के एक गांव में रहने वाला किसान हूं। मेरी उम्र करीब सत्तर साल है और पूरी जिंदगी मैंने अपने खेतों में सिर्फ धान ही उगाया है। दरअसल मैं आदिवासियों के जिस कुराचिया समुदाय से आता हूं, वह पारंपरिक तरीके से खेती करने के लिए ही जाना जाता है। हालांकि हमारे आदिवासी समुदाय के बहुत सारे लोगों ने खेती के नए तरीके अपना लिए हैं, लेकिन मैं खेती के उन्हीं तौर-तरीकों पर कायम हूं, जिस तरह हमारे पिता और पुरखे खेती करते थे। इसका मतलब यह नहीं है कि मेरे खेत में उपज कम होती है या मैं घाटा सहने वाला किसान हूं। मैं अपने साथी किसानों को यही तो बताता हूं कि धान की देसी किस्मों का संरक्षण कर और जैविक खाद का इस्तेमाल कर हम खेती को घाटे का सौदा बनने से बचा सकते हैं। जैविक खाद का इस्तेमाल करने से खेतों की उर्वरा शक्ति भी बरकरार रहती है, जबकि रासायनिक खाद हमारे खेतों को नष्ट कर डालते हैं।

मैं हर साल बीजों को संरक्षित करता हूं। अपने पिता और चाचा को भी मैंने यह करते देखा है।

मैं दस साल की उम्र से ही खेत में अपने पिता और चाचा का हाथ बंटाने लगा था। उनसे मैंने यह सीखा कि खेती के पारंपरिक तरीके केवल गलत हों, ऐसा नहीं है। बल्कि उन्हीं से मैंने जाना कि पुराने समय में खेती को प्राकृतिक जोखिमों से बचाने की व्यवस्था थी, क्योंकि उस समय भी कभी-कभी किसान सूखे और अतिवृष्टि से जूझते थे। जब मैं बीस साल का हुआ, तब मेरे चाचा ने खेती की पूरी जिम्मेदारी मुझे सौंप दी, क्योंकि उनकी उम्र हो चुकी थी और वह रोज खेतों में आने लायक नहीं थे।

जिम्मेदारी मिलते ही पूरी मेहनत के साथ मैंने खेती शुरू की। लगभग पचास साल से मैं खेती कर रहा हूं। अपवाद के रूप में दो-तीन साल को छोड़ दें, तो पारंपरिक तरीके से धान की खेती करने से मुझे कोई नुकसान नहीं हुआ। वायनाड हमेशा धान की खेती के लिए जाना जाता रहा है। लेकिन पिछले करीब बीस साल से हाइब्रिड किस्मों के सामने धान की देसी नस्लें दम तोड़ रही थीं। मेरे आसपास के अनेक किसानों ने देसी नस्लों से पीछा छुड़ा लिया था। लेकिन मैं हार मानने वालों में से नहीं था। मेरे पास देसी धान की करीब पचास किस्म के बीज हैं। मैं खेत के आधे हिस्से में बारी-बारी से इन्हीं बीजों के पौधे तैयार कर रोपाई करता हूं। अलग-अलग किस्मों की देखरेख के तरीके अलग हैं, जिनका मैं पूरा ध्यान रखता हूं। इसीलिए धान की देसी किस्मों से मुझे कोई नुकसान नहीं हुआ। मैं हर साल बीजों को संरक्षित करता हूं। अपने पिता और चाचा को भी मैंने यह करते देखा है। देश-दुनिया के किसान और खेती पर काम करने वाले छात्र मेरे पास देसी धान की जानकारी लेने के लिए आते रहते हैं। मैं जिस झोपड़ी में पत्नी के साथ रहता हूं, वह भी बहुत लोगों के आकर्षण का केंद्र है, क्योंकि यह डेढ़ सौ साल पुरानी है, जो मुझे अपने पिता और चाचा से मिली है। मिट्टी, बांस और फूस से बनी ऐसी झोपड़ी पहले हमारे इलाके में बहुत थी, पर अब सिर्फ मेरी ही झोपड़ी बची है। मैं अपने बीज बेचता नहीं, पर जरूरतमंदों को इस शर्त पर देता हूं कि फसल कट जाने के बाद वे मुझे इसी अनुपात में बीज लौटा जाएंगे। मेरे चार बेटों में से किसी ने पारंपरिक खेती में दिलचस्पी नहीं दिखाई, न ही सरकार ने मेरी कभी मदद की, लेकिन इससे मेरी मुहिम नहीं रुकने वाली।

-विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

राजनीति में प्रियंका

मैंने जब भी प्रियंका को रायबरेली और अमेठी में अपनी मां और भाई के लिए प्रचार करते हुए देखा है, तो कई बार मुझे लगा है कि सोनिया गांधी को अपने बेटे को नहीं, बल्कि बेटी को अपना वारिस बनाकर राजनीति में लाना चाहिए था।

वर्षों से गांधी परिवार के प्रशंसक कहते आए हैं कि उनके पास एक ब्रह्मास्त्र है, जिसका नाम है प्रियंका गांधी। इनका यह प्रचार इतना सफल रहा है कि पिछले लोकसभा चुनाव में मुझे याद है कि बनारस के अस्सी घाट पर पप्पू की चाय की दुकान पर जब शहर के बुद्धिजीवी और राजनीतिज्ञ शाम को बैठकर चाय पर चर्चा किया करते थे, तब एक ही बात पर उनकी सहमति थी कि नरेंद्र मोदी को वाराणसी में अगर कोई हरा सकता है, तो वह प्रियंका गांधी हैं।

इस बार भी देश भर में इस तरह की चर्चा बहुत हुई है। प्रियंका ने स्वयं इशारा किया कि वह बनारस में कांग्रेस की प्रत्याशी हो सकती हैं। जब वह गंगा जी के रास्ते वाराणसी पहुंचीं और पत्रकारों ने उनको घेरकर पूछा कि अगर वह लोकसभा का चुनाव लड़ेंगी, तो कहां से लड़ना चाहेंगी, तो इस पर प्रियंका ने मुस्कराकर कहा, 'वाराणसी से क्यों नहीं?' लेकिन पिछले सप्ताह यह तय हो गया कि प्रियंका इस बार भी नरेंद्र मोदी को उनके चुनाव क्षेत्र में चुनौती देने नहीं आएंगी, बल्कि कांग्रेस का प्रत्याशी कोई और है। ऐसा क्यों? क्या गांधी परिवार के समर्थकों को भी अब लगने लग गया है कि शायद यह ब्रह्मास्त्र था ही नहीं?

सच पूछिए तो मैंने जब भी प्रियंका को रायबरेली और अमेठी में अपनी मां और भाई के लिए प्रचार करते हुए देखा है, तो कई बार मुझे लगा है कि सोनिया गांधी को अपने बेटे को नहीं, बल्कि बेटी को अपना वारिस बनाकर राजनीति में लाना चाहिए था। सो प्रियंका जब से सक्रिय राजनीति में आई हैं, मैंने

तवलीन सिंह

उनके भाषणों, उनकी गतिविधियों और उनके राजनीतिक विचारों पर यह सोचकर जरूरत से ज्यादा ध्यान दिया है कि पता नहीं, कब वह चमत्कार करके दिखाएंगी, कब स्पष्ट करेंगी कि उनके अपने राजनीतिक विचार क्या हैं और सक्रिय राजनीति में वह भारत के लिए क्या करने के लिए आई हैं।

मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक उन्होंने ऐसी एक भी बात नहीं कही है, जिससे यह लगे कि उनकी राजनीतिक यात्रा देश के भले के लिए आरंभ हुई है, अपने परिवार को सत्ता में वापस लाने के लिए नहीं।

वह बोलती तो बहुत अच्छा हैं। अपने भाई से कहीं अच्छी हिंदी बोल लेती हैं और ज्यादा आसानी से लोगों से घुल-मिल भी लेती हैं। लेकिन इसके अलावा उनमें कोई गुण नहीं दिखे हैं, जिसको देखकर कोई कह सके कि भारत को वास्तव में एक नया राजनेता मिला है।

प्रियंका के जितने भी भाषण मैंने सुने हैं, उनमें या तो उन्होंने अपनी दादी की तारीफ की है या अपने भाई की। सो हम जान गए हैं कि इंदिरा गांधी को फुटबॉल मैच देखना पसंद था। हमको यह भी जानकारी मिली है कि 'राहुल जी' को भी यह खेल बहुत पसंद है और प्रियंका के बेटे को भी। राजनीतिक तौर पर यह जानकारी मिली है कि वह अपने परिवार को सत्ता में इसलिए वापस लाना चाहती हैं, क्योंकि राजनीति में उनके कदम रखने के बाद उन्हें जितने भी लोग मिले हैं, वे सब मोदी के दौर में दुखी रहे हैं, चाहे वे किसान हों या मजदूर, व्यापारी हों या छात्र।

लेकिन इन वर्गों की समस्याओं का समाधान प्रियंका गांधी की नजरों में एक ही है : मेरे परिवार को वापस सत्ता में लाओ, क्योंकि हम ही जानते हैं कि इस देश को कैसे चलाया जाना चाहिए। आपके परिवार के लिए यह अच्छा उपाय होगा प्रियंका जी, लेकिन यह भी तो बता दें कि आपका परिवार अब क्या करके दिखा सकता है, जो वह लगभग पचास साल के कार्यकाल में नहीं कर सका था।

हरियाली और रास्ता

प्रोफेसर चटर्जी, वेद और प्रज्ञा

वेद की कहानी, जिसे प्रोफेसर की डांट के बजाय सहपाठी के व्यवहार ने बदल दिया।

प्रोफेसर चटर्जी अपने बेटे के साथ फिल्म देखने गई थीं। वह सिनेमा हॉल के सामने खड़ी थीं की उनके सामने एक बड़ी-सी गाड़ी आकर रुकी, जिससे एक युवक बाहर निकला। उसने काले रंग का महंगा सूट पहना हुआ था और किसी अमीर परिवार का लगता था। प्रोफेसर चटर्जी पर नजर पड़ते ही उसने तुरंत सिर झुकाकर नमस्कार किया। प्रोफेसर उसे पहचान गई और पूछा, कैसे हो वेद? उसने कहा, अच्छा हूं मैम। प्रोफेसर कहने लगीं, यकीन ही नहीं होता कि तुम इंजीनियर बन गए हो। मैं तुम्हें कितना डांटा करती थी। आज तुम्हें देखकर खुद पर गर्व होता है। वेद ने कहा, आपसे मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। आपको याद होगा कि मेरा पढ़ाई में मन नहीं लगता था। मुझे सही रास्ते पर लाने वाली मेरी दोस्त प्रज्ञा थी। क्या आपको उसकी याद है प्रोफेसर? आपको पता है, मैंने आपकी क्लास में कभी कोई असाइनमेंट नहीं किया। न ही किसी भी टेस्ट के लिए पढ़ाई की। प्रज्ञा हमेशा मुझसे कहती थी, मैं तुम्हें खराब नंबर लाते हुए नहीं देख सकती। मैं चाहती हूं कि तुम अपनी जिंदगी ऐसे व्यर्थ न गंवाओ, बल्कि कुछ करके दिखाओ। एक दिन उसने मुझसे कहा कि तुम्हारी वजह से तुम्हारे मम्मी-पापा भी कितने परेशान होते हैं। इसके बावजूद मैं फायदा उठाकर अपना सारा काम उससे करा लेता था। पर धीरे-धीरे मुझ पर प्रज्ञा की बातों का गहरा असर पड़ने लगा। मैं शरारतें और घूमना-फिरना छोड़कर पढ़ाई को गंभीरता से लेने लगा। प्रज्ञा मुझे हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती थी। उसी की वजह से मैं जिंदगी को समझ पाया हूं। उसी की दी हुई सोच का असर है, जिसकी वजह से मैं आज इस मुकाम पर पहुंच पाया हूं। वेद की बातें सुन प्रोफेसर चटर्जी चुपचाप आगे निकल गईं।

उपदेश देना आसान होता है, पर उपदेश से बेहतर होता है उदाहरण।

खुली खिड़की

विश्व भर में खसरे की बीमारी में वृद्धि

आंकड़े उन बच्चों की संख्या हैं जिन्हें टीका नहीं लगाया गया

विश्व भर में खसरे की बीमारी में वृद्धि हो रही है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट बताती है कि 2010-2017 के बीच दुनिया के 10 उच्च आय वाले देशों में लाखों बच्चों को खसरे का पहला टीका ही नहीं लगवाया गया है। इनमें अमेरिका पहले स्थान पर है।

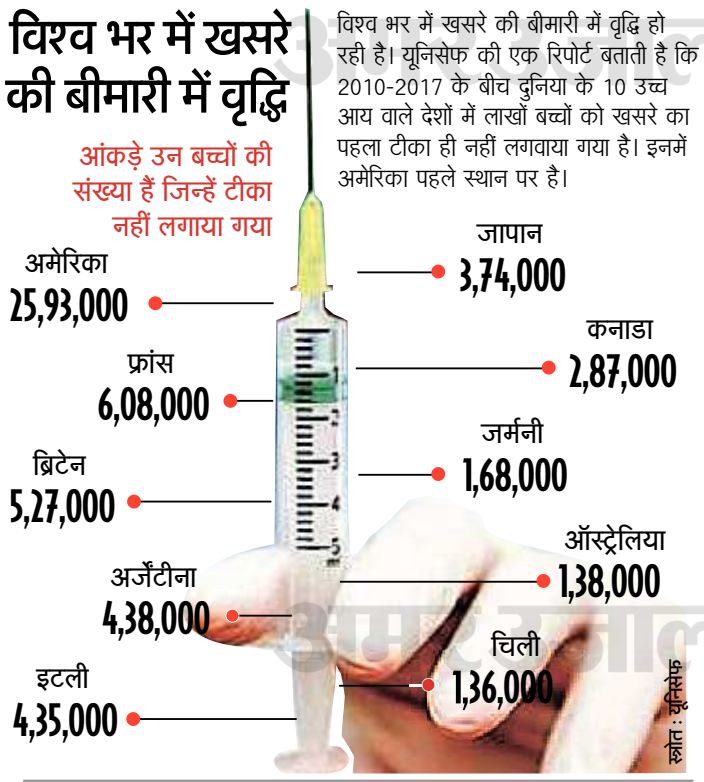

स्रोत : यूनिसेफ

साधु के लक्षण

एक दिन कोलकाता के दक्षिणेश्वर मंदिर में कुछ साधु-संन्यासी स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास सत्संग के लिए पहुंचे। एक सद्गृहस्थ स्वामी जी के सान्निध्य में रहकर पिछले काफी समय से साधना कर रहा था। स्वामी जी उसकी सादगी, निश्छलता और भक्ति भावना से बेहद प्रभावित थे। किसी साधु ने अचानक स्वामी जी से प्रश्न किया, 'महाराज, क्या साधु बनने के लिए गृहस्थ जीवन का परित्याग करना जरूरी है? यह प्रश्न सुन परमहंस जी ने अपनी बगल में बैठे हुए सफेद वस्त्रधारी उस गृहस्थ साधक की ओर संकेत करते हुए संन्यासियों से कहा, इसे देखिए, यह परिवार के बीच रहते हुए भी सच्चा साधु है, क्योंकि इसने अपना मन, प्राण पूरी तरह ईश्वर को समर्पित कर दिए हैं। यह सदैव भगवान का चिंतन करता है। यह बीमारों और वृद्धों में भगवान् के दर्शन कर उनकी सेवा करता है। मैं तो सदाचारी गृहस्थ को ही सबसे श्रेष्ठ संत मानता हूं। रामकृष्ण परमहंस ने कहा, साधु को कंचन और कामिनी से दूर रहना चाहिए। उसे प्रत्येक नारी में माता और बहन के दर्शन करने चाहिए। कल क्या खाऊंगा, क्या पहनूंगा, इसकी उसे तनिक भी चिंता नहीं करनी चाहिए। जो साधु झाड़-फूंक करने में लग जाता है, बीमारियां दूर करने और चमत्कार का दावा करता है, उसका पतन हो जाता है। साधु बनने वाले को भगवान के भजन और सेवा-परोपकार में रत रहना चाहिए।

सत्संग

-संकलित